उत्तराखंड उच्च न्यायालय, नैनीताल

फौजदारी विविधआवेदन संख्या. 530 /2020

कार्तिक जयशंकर और एक अन्य ....याचिकाकर्ता गण

बनाम

उत्तराखंड राज्य और अन्य .....प्रतिवादी गण

उपस्थित :-

श्री पी. बी. सुरेश और श्री बी.एस.अधिकारी, याचिकाकर्ताओं के वकील।
श्री वी.के. जेमिनी, डी.ए.जी. सुश्री मीना बिष्ट के साथ, राज्य के लिए वाद धारक।
श्री अरविंद वशिष्ठ, वरिष्ठ अधिवक्ता, श्री विवेक पाठक द्वारा सहायता प्राप्त, प्रतिवादी नं.2 की तरफ से अधिवक्ता

निर्णय

माननीय श्री रविन्द्र मैथानी, जे. (मौखिक)

इस याचिका में चुनौती दिनांक 28.07.2020 के आरोपपत्र के साथ-साथ विशेष सत्र परीक्षण संख्या 06 वर्ष 2020 में जिला और सत्र न्यायाधीश, विशेष न्यायाधीश, अनुसूचित जाति /अनुसूचित जनजाति अधिनियम, नैनीताल ("मामला") की अदालत द्वारा पारित संज्ञान आदेश दिनांक 21.07.2020, राज्य बनाम श्रीमती पार्वती लाल और अन्य, के साथ-साथ मामले की पूरी कार्यवाही को दी गयी है।

2. पक्षकारों के विद्वान अधिवक्ता को सुना एवं अभिलेख का अवलोकन किया।

3. विवाद को समझने के लिए आवश्यक तथ्य, संक्षेप में बताए गए, इस प्रकार हैं। यह मामला 2020 की एक एफआईआर संख्या 03 पर आधारित है, जो प्रतिवादी संख्या 2 (सूचनाकर्ता) द्वारा 01.06.2020 को राजस्व पुलिस स्टेशन सरना, तहसील धारी, जिला नैनीताल में धारा 504, 506 और 427 आईपीसी और जाति और अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण) अधिनियम, 1989 ("अधिनियम") की धारा 3(i)(r), 3(i)(s), 3(i)(z) के तहत दर्ज किया गया। इसके अनुसार, 27.05.2020 को, जब मुखबिर अपने बेटे और एक विजय अधिकारी के साथ जीलिंग एस्टेट में स्थित अपनी संपत्ति का दौरा किया, तो उसने पाया कि उसके घर के ताले टूटे हुए थे और घर से फर्नीचर और अन्य सामान गायब थे। उस समय, याचिकाकर्ताओं ने, एफआईआर के अनुसार, मुखबिर के साथ दुर्व्यवहार किया और जाति रंग की टिप्पणी के साथ उसका अपमान किया। उन्होंने उसे धमकी भी दी कि वे मुखबिर को उस स्थान पर नहीं रहने देंगे। यही एफआईआर है, जिसमें जाँच के पश्चात आरोप पत्र प्रस्तुत किया गया है, जिस पर संज्ञान लिया गया था। इसका यहाँ विरोध किया गया है।

4. याचिकाकर्ताओं की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि याचिकाकर्ताओं ने आरोप पत्र को चुनौती दी है। यदि आरोपपत्र रद्द कर दिया जाता है, तो समन आदेश अपने आप समाप्त हो जाएगा। उन्होंने अपने तर्कों में निम्नलिखित बिंदु प्रस्तुत किये :-

4.1. समन आदेश एक अंतर्वर्ती आदेश है। अधिनियम की खंड 14ए के अनुसार यह अपील योग्य नहीं है।

4.2. अधिनियम की धारा 14 ए(2) के अनुसार केवल जमानत एक अंतर्वर्ती आदेश है, जो अपील योग्य है। इस पहलू पर, विद्वान अधिवक्ता ने सीबीआई के माध्यम से वीसी शुक्ला बनाम राज्य 1980 सप्प. एससीसी 92 के मामले में दिए गए फैसले का उल्लेख किया है ।

4.3. वी.सी. शुक्ल (उपरोक्त) के मामले में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने यह निर्धारित करने के लिए परीक्षण निर्धारित किया है कि अंतर्वर्ती आदेश क्या है और अंतिम आदेश के बराबर क्या है। माननीय उच्चतम न्यायालय ने इस प्रकार टिप्पणी कीः

"जहां तक इस निर्णय का संबंध है, इस मामले का एक और पहलू है जिस पर विचार किया जाना चाहिए, जिसका उल्लेख हम अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता के तर्क के अंतिम भाग पर विचार करते समय करेंगे।इस समय यह कहने के लिए पर्याप्त है कि संदर्भित मामला संघीय न्यायालय द्वारा लिए गए दृष्टिकोण और अंग्रेजी निर्णयों का भी पूरी तरह से समर्थन करता है कि कोई आदेश अंतिम नहीं है, बल्कि एक अंतर्वर्ती है यदि यह पक्षों के अधिकारों को हमेशा के लिए निर्धारित या तय नहीं करता है। इस प्रकार, ऊपर उल्लिखित प्राधिकारियों पर विचार करने पर, निम्नलिखित प्रस्ताव सामने आते हैं : -

(1) कि एक आदेश जो पक्षकारों के अधिकार को निर्धारित नहीं करता है, लेकिन विचारण या परीक्षण का मात्र एक पहलू एक अंतर्वर्ती आदेश है;

(2) कि अंतर्वर्ती आदेश की अवधारणा को अंतिम आदेश के विपरीत समझाया जाना चाहिए। दूसरे शब्दों में, यदि कोई आदेश अंतिम आदेश नहीं है, तो यह एक अंतर्वर्ती आदेश होगा;

(3) अंग्रेजी न्यायालयों और संघीय न्यायालय द्वारा आम तौर पर स्वीकार किए गए परीक्षणों में से एक यह देखना है कि क्या आदेश एक तरह से तय किया जाता है, यह कार्यवाही को समाप्त कर सकता है, लेकिन यदि दूसरे तरीके से तय किया जाता है, तो कार्यवाही जारी रहेगी, क्योंकि, हमारी राय में, दण्ड प्रक्रिया संहिता में 'अंतर्वर्ती आदेश' शब्द का

उपयोग बहुत व्यापक अर्थों में किया गया है ताकि मध्यवर्ती या अर्ध-अंतिम आदेशों को भी शामिल किया जा सके;

(4) कि अभियुक्त को दोषमुक्त करने वाला विशेष न्यायालय द्वारा पारित आदेश निस्संदेह एक अंतिम आदेश होगा क्योंकि यह अंततः पक्षकारों के अधिकारों का निर्णय करता है और विवाद को समाप्त करता है और इस प्रकार न्यायालय के समक्ष पूरी कार्यवाही को समाप्त कर देता है ताकि उसके बाद न्यायालय द्वारा कुछ भी नहीं किया जा सके;

(5) कि भले ही अधिनियम किसी अंतर्वर्ती आदेश के विरुद्ध अपील की अनुमति नहीं देता है, अभियुक्त को किसी निवारण के बिना नहीं छोड़ा जाता है क्योंकि उपयुक्त मामलों में, अभियुक्त हमेशा संविधान के अनुच्छेद 136 के तहत अपनी क्षेत्राधिकार में इस न्यायालय का रुख कर सकता है, यहां तक कि अभियुक्त के विरुद्ध आरोप तैयार करने वाले आदेश के विरुद्ध भी। इस प्रकार, यह नहीं कहा जा सकता है कि आरोप तय करने के आदेश के विरुद्ध अपील की अनुमति नहीं देने से, अधिनियम अभियुक्त के साथ गम्भीर अन्याय करता है।

4.4. अधिनियम की धारा 14ए दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 ("संहिता") की धारा 482 के तहत इस न्यायालय की क्षेत्राधिकार को समाप्त नहीं करती है। पर्याप्त न्याय सुनिश्चित करने के लिए, यह न्यायालय, किसी दिए गए मामले में, अधिनियम की धारा 14ए के तहत प्रतिबंध के बावजूद इस क्षेत्राधिकार का प्रयोग कर सकता है।

4.5. अपने तर्क के समर्थन में, याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता ने कानून के सिद्धांतों पर भरोसा रखा है, जैसा कि पृथ्वी राज चौहान बनाम भारत संघ और अन्य, 2020 (4) एससीसी 727, अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण) संशोधन अधिनियम, 2015 की धारा 14 का प्रावधान, 2018

एससीसी ऑनलाइन सभी 2087 ("इलाहाबाद मामला") और भारत संघ बनाम महाराष्ट्र राज्य, 2020 (4) एससीसी 761के मामलों में निर्धारित किया गया है।

4.6. पृथ्वी राज चौहान (उपर्युक्त) के मामले में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने अधिनियम की धारा 18 और 18ए के प्रावधानों की व्याख्या की। अधिनियम की धारा 18 में यह प्रावधान है कि संहिता की धारा 438 अधिनियम के तहत अपराध करने वाले व्यक्ति पर लागू नहीं होगी। इसके अनुसार, **"इस अधिनियम के तहत अपराध करने के आरोप में किसी भी व्यक्ति की गिरफ्तारी से जुड़े किसी भी मामले के संबंध में संहिता की धारा 438 में कुछ भी लागू नहीं होगा"।** पृथ्वी राज चौहान (उपर्युक्त) के मामले में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने इन पहलुओं पर विचार किया और कहा कि यदि अधिनियम के प्रावधानों के तहत प्रथम दृष्टया मामला नहीं बनता है, तो प्रतिबंध लागू नहीं होता है। पैरा 11 और 32 में माननीय उच्चतम न्यायालय ने निम्नलिखित रूप में मत व्यक्त कियाः

> "11. दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 438 के प्रावधानों की प्रयोज्यता के संबंध में, यह 1989 अधिनियम के तहत मामलों पर लागू नहीं होगा। यद्यपि, यदि शिकायत 1989 के अधिनियम के प्रावधानों की प्रयोज्यता के लिए एक प्रथम दृष्टया मामला नहीं बनाती है, तो धारा 18 और 18-ए (i) द्वारा सृजित प्रतिबंध लागू नहीं होगी। हमने समीक्षा याचिकाओं पर निर्णय लेते समय इस पहलू को स्पष्ट किया है।
>
> "32. जहां तक धारा 18-ए और अग्रिम जमानत के प्रावधान का संबंध है, न्यायाधीश मिश्रा के फैसले में कहा गया है कि ऐसे मामलों में जहां शिकायत में गिरफ्तारी के लिए कोई प्रथमदृष्टया सामग्री मौजूद नहीं है, अदालत के पास पूर्व -गिरफ्तारी जमानत का निर्देश देने की अंतर्निहित शक्ति है।

4.7. इलाहाबाद मामले में अधिनियम की धारा 14ए की प्रयोज्यता पर चर्चा की गई है। निर्णय के पैरा 93 में, माननीय न्यायालय द्वारा विधि का प्रस्ताव

प्रतिपादित किया गया है और यह कहा गया है कि **"इस प्रश्न का उत्तर देते समय, हम इस बात से अवगत हैं कि अनुच्छेद 226 और 227 संविधान की मूल संरचना का हिस्सा हैं। राज्य में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा (विशेष प्रकोष्ठ, नई दिल्ली के माध्यम से) इन शक्तियों को विधायिका के किसी भी अधिनियम द्वारा सीमित या बाधित नहीं किया जा सकता है। जिन मापदंडों और आधारों पर धारा 482 Cr.P.C के प्रावधान लागू किए जाने के हकदार हैं, वे भी अच्छी तरह से तय हैं। इसलिए प्रश्न वास्तव में इन अधिकारिताओं को हटाने का नहीं है, बल्कि यह है कि क्या वे उन निर्णयों, सजाओं या आदेशों के संबंध में लागू किए जाने के हकदार हैं जो अन्यथा धारा 14ए के तहत अपील योग्य हैं।"**

4.8. अनिवार्य रूप से, माननीय उच्च न्यायालय ने पैरा 121 बी में इस प्रश्न का उत्तर दिया, जो नीचे दिया गया हैः

> **"121.....**
>
> **बी. क्या संशोधन अधिनियम की धारा 14-ए में निहित प्रावधानों को ध्यान में रखते हुए, भारत के संविधान के अनुच्छेद 226/227 के प्रावधानों के तहत एक याचिका या दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 397 के तहत एक संशोधन या धारा 482 Cr.P.C. के तहत एक याचिका विचारणीय है। या दूसरे शब्दों में, चाहे संशोधित अधिनियम की धारा 14-ए के आधार पर, संविधान के अनुच्छेद 226/227 के तहत उच्च न्यायालय की शक्तियां या इसकी पुनरीक्षण शक्तियां या धारा 482 सीआरपीसी के तहत शक्तियां हटा दी गई हैं?**
>
> **इसलिए हम प्रश्न (बी) का उत्तर यह अभिनिर्धारित करते हुए देते हैं कि यद्यपि इस न्यायालय की संवैधानिक और अंतर्निहित शक्तियों को धारा 14ए द्वारा "अपदस्थ" नहीं किया गया है, उन्हें उन मामलों और स्थितियों में लागू नहीं किया जा सकता है जहां धारा 14ए के तहत अपील होगी। जहाँ तक पुनरीक्षण क्षेत्राधिकार के संबंध में न्यायालय की**

शक्तियों का संबंध है, हम पाते हैं कि धारा 397 CrPC के प्रावधान धारा 14A में किए गए विशेष प्रावधानों के आधार पर निहित हैं। हम अपने निष्कर्षों के आलोक में यह भी मानते हैं कि धारा 14ए की उप-धारा (1) में आने वाले "आदेश" शब्द में मध्यवर्ती आदेश भी शामिल होंगे।"

4.9. भारतीय संघ (उपर्युक्त) के मामले में भी संहिता की धारा 482 के प्रावधानों की प्रयोज्यता, अधिनियम के तहत अपराधों से संबंधित मामलों में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा विचार किया गया है। माननीय उच्चतम न्यायालय ने झूठे मामले दर्ज करने और प्रभावित व्यक्तियों के लिए उपचार के पहलू पर भी विचार किया। यह अभिनिर्धारित किया गया है कि ऐसी स्थिति में, संहिता की धारा 482 के तहत कार्यवाही का सहारा लिया जा सकता है। पैरा 52 और 60 में, माननीय उच्चतम न्यायालय ने निम्नानुसार टिप्पणी कीः

"52. ऐसा कोई धारणा नहीं है कि अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के सदस्य एक वर्ग के रूप में कानून के प्रावधानों का दुरुपयोग कर सकते हैं और इसका सहारा उच्च जातियों के सदस्यों या अभिजात वर्ग के सदस्यों द्वारा नहीं लिया जाता है। झूठी रिपोर्ट दर्ज करने के लिए, यह नहीं कहा जा सकता है कि किसी व्यक्ति की जाति इसका कारण है। यह मानवीय असफलता के कारण है न कि जाति कारक के कारण। जाति को इस तरह के कार्य के लिए जिम्मेदार नहीं ठहराया जा सकता है। दूसरी ओर, पिछड़ेपन के कारण अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति के सदस्य शायद ही झूठी सूचना देने वाली पहली सूचना रिपोर्ट दर्ज करने का साहस जुटा पाते हैं। यदि यह गलत/अप्रमाणित पाया जाता है, तो यह त्रुटिपूर्ण जांच या जाति कारक के बावजूद मानवीय विफलताओं सहित अन्य विभिन्न कारणों से हो सकता है। कुछ ऐसे मामले हो सकते हैं जो झूठे हो सकते हैं जो न्यायालय द्वारा हस्तक्षेप का आधार हो सकते हैं, लेकिन इस तरह के दुरुपयोग के कारण कानून को बदला नहीं जा सकता है। ऐसी स्थिति में,

सीआरपीसी की धारा 482 के तहत कार्यवाही में इसका ध्यान रखा जा सकता है।

"60. यदि किसी व्यक्ति को यह आशंका है कि उसे गिरफ्तार किया जा सकता है, परेशान किया जा सकता है और झूठा फंसाया जा सकता है, तो वह धारा 482 के तहत एफआईआर को रद्द करने के लिए उच्च न्यायालय का दरवाजा खटखटा सकता है जैसा कि उड़ीसा राज्य बनाम देबेंद्र नाथ पाढ़ी [उड़ीसा राज्य बनाम देबेंद्र नाथ पाढ़ी (2005) 1 एससीसी 568] में देखा गया।

4.10. प्रथमदृष्टया कोई मामला नहीं बनता है। याचिकाकर्ताओं के विद्वान वकील ने कहा कि अनिवार्य रूप से, पक्षों के बीच सम्पति का विवाद है और जो कुछ भी हुआ है, एफआईआर के अनुसार, सम्पति के संबंध में विवाद के कारण है। ऐसे मामलों में यह तर्क दिया जाता है कि अधिनियम के प्रावधान लागू नहीं होते हैं।

4.11 अपने तर्क के समर्थन में, याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता ने कानून के सिद्धांतों पर भरोसा किया है, जैसा कि खुमान सिंह बनाम मध्य प्रदेश राज्य, 2019 एससीसी ऑनलाइन एससी 1104 और हितेश वर्मा बनाम उत्तराखंड राज्य और एक अन्य, (2020) 10 एससीसी 710 के मामले में निर्धारित किया गया है।

4.12 खुमान सिंह (उपर्युक्त) के मामले में, माननीय उच्चतम न्यायालय ने कानून के सिद्धांतों को अनुमोदन के साथ उद्धृत किया, जैसा कि दिनेश उर्फ बुद्ध बनाम राजस्थान राज्य (2006) 3 एस. सी. सी. 771 और पैरा 15 में, माननीय न्यायालय ने निम्नानुसार अवलोकन किया:

"15. धारा 3 (2) (v) के लागू होने के लिए अनिवार्य शर्त यह है कि किसी व्यक्ति के खिलाफ इस आधार पर अपराध किया गया होगा कि ऐसा व्यक्ति अनुसूचित जाति या अनुसूचित जनजाति का सदस्य है। वर्तमान मामले में इस आवश्यकता को स्थापित करने के लिए कोई सबूत नहीं

दिया गया है। अभियोजन पक्ष का मामला यह नहीं है कि पीड़िता के साथ बलात्कार किया गया था क्योंकि वह अनुसूचित जाति की थी। उस आशय के साक्ष्य का अभाव में, धारा 3 (2) (v) का कोई अनुप्रयोग नहीं है। यदि अत्याचार अधिनियम की धारा 3 (2) (v) लागू होती तो कानून के अनुसार सजा आजीवन कारावास और जुर्माना होती।

4.13. हितेश वर्मा (उपर्युक्त) के मामले में इस सिद्धान्त का पालन किया गया है। अनुच्छेद 13 और 18 में, माननीय उच्चतम न्यायालय ने हितेश वर्मा (उपर्युक्त) के मामले में निम्नलिखित मत व्यक्त कियाः

"13. अधिनियम की धारा 3 (1) (आर) के तहत अपराध एक अनुसूचित जाति या अनुसूचित जनजाति के सदस्य को अपमानित करने के इरादे से जानबूझकर अपमान और धमकी के घटक को इंगित करेगा। किसी व्यक्ति का अपमान या धमकी देना अधिनियम के तहत अपराध नहीं होगा जब तक कि ऐसा अपमान या धमकी अनुसूचित जाति या अनुसूचित जनजाति से संबंधित पीड़ित के कारण न हो। अधिनियम का उद्देश्य अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों की सामाजिक-आर्थिक स्थितियों में सुधार करना है क्योंकि उन्हें कई नागरिक अधिकारों से वंचित रखा गया है। इस प्रकार, अधिनियम के तहत एक अपराध तब माना जाएगा जब समाज के कमजोर वर्ग के सदस्य को क्रोध, अपमान और उत्पीड़न का सामना करना पड़ता है। किसी भी पक्ष द्वारा भूमि पर अधिकार का दावा क्रोध, अपमान या उत्पीड़न के कारण नहीं है। प्रत्येक नागरिक को कानून के अनुसार उनके उपचारों का लाभ उठाने का अधिकार है। इसलिए, यदि अपीलकर्ता या उसके परिवार के सदस्यों ने दीवानी न्यायालय के क्षेत्राधिकार का आह्वान किया है, या उस प्रतिवादी ने दीवानी न्यायालय के अधिकार क्षेत्र का आह्वान किया है, तो पक्षकार कानून द्वारा स्थापित प्रक्रिया के अनुसार अपने उपचार का लाभ

उठा रहे हैं। इस तरह की कार्रवाई इस कारण से नहीं है कि प्रतिवादी 2 अनुसूचित जाति का सदस्य है।

"18. इसलिए, अधिनियम के तहत अपराध मात्र इस तथ्य पर स्थापित नहीं होता है कि सूचना देने वाला अनुसूचित जाति का सदस्य है, जब तक कि अनुसूचित जाति या अनुसूचित जनजाति के सदस्य को इस कारण से अपमानित करने का इरादा नहीं है कि पीड़ित ऐसी जाति से संबंधित है। वर्तमान मामले में, पक्षकार भूमि के कब्जे को लेकर मुकदमा कर रहे हैं। गाली-गलौज करने का आरोप उस व्यक्ति के विरुद्ध है जो सम्पति पर अधिकार का दावा करता है। यदि ऐसा व्यक्ति अनुसूचित जाति का है, तो अधिनियम की धारा 3(1)(आर) के तहत अपराध नहीं बनता है।

4.14. अधिनियम के प्रावधान भी लागू नहीं होते हैं, क्योंकि कथित घटना सार्वजनिक रूप से नहीं हुई थी। अपने तर्क के समर्थन में, याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता ने हितेश वर्मा (उपर्युक्त) के मामले में दिए गए सिद्धांतों पर और अधिक भरोसा किया, जिसमें अधिनियम के प्रावधान का उल्लेख किया गया है। न्यायालय ने **"सार्वजनिक दृष्टि के भीतर कोई भी स्थान"** वाक्यांश की व्याख्या की है।निर्णय के पैरा 14 में, माननीय न्यायालय ने निम्नलिखित रूप में मत व्यक्त किया हैः

"14. प्रावधान का एक अन्य प्रमुख घटक "जनता के सामने किसी भी स्थान पर" अपमान या धमकी है। स्वर्ण सिंह बनाम राज्य [स्वर्ण सिंह बनाम राज्य, (2008) 8 एस. सी. सी. 435 (2008) 3 एस. सी. सी. (सी. आर. आई.) 527] के रूप में रिपोर्ट किए गए निर्णय में जिसे "सार्वजनिक दृष्टि में स्थान" माना जाना है, इस न्यायालय के समक्ष विचार के लिए आया था। न्यायालय ने "सार्वजनिक स्थान" और "सार्वजनिक दृष्टि के भीतर किसी भी स्थान पर" अभिव्यक्ति के बीच अंतर किया था। यह माना गया था कि अगर कोई अपराध इमारत के बाहर किया जाता है

उदाहरण के लिए एक घर के बाहर एक लॉन में, और लॉन को सीमा दीवार के बाहर सड़क या गली से किसी के द्वारा देखा जा सकता है, तो लॉन निश्चित रूप से सार्वजनिक दृश्य के भीतर एक जगह होगी। इसके विपरीत, यदि टिप्पणी किसी इमारत के अंदर की जाती है, लेकिन जनता के कुछ सदस्य वहां हैं (मात्र रिश्तेदार या दोस्त नहीं) तो यह अपराध नहीं होगा क्योंकि यह सार्वजनिक रूप से नहीं है। यह वाक्य स्वर्ण सिंह, (2008) 8 एस. सी. सी. 435, ए. टी. पी. के उद्धरण में नीचे बताए गए वाक्य के विपरीत प्रतीत होता है। 736 डी-ई, और नीचे पैरा 15 में इस सिद्धान्त के अनुप्रयोग में:इसके अलावा, भले ही टिप्पणी एक इमारत के अंदर की गई हो, लेकिन जनता के कुछ सदस्य वहां हैं (मात्र रिश्तेदार या दोस्त नहीं) तो भी यह एक अपराध होगा क्योंकि यह जनता की नजर में है।"] न्यायालय ने के निम्नानुसार अभिनिर्धारित किया। (एस. सी. सी. पीपी. 443-44, पैरा 28)

"28. एफआईआर में यह आरोप लगाया गया है कि विनोद नागर, प्रथम मुखबिर का, अपीलकर्ताओं 2 और 3 द्वारा (उसे "चमार" कहकर) अपमान किया गया था, जब वह परिसर के गेट पर खड़ी कार के पास खड़ा था। हमारी राय में, यह निश्चित रूप से सार्वजनिक दृश्य के भीतर एक स्थान था, क्योंकि एक घर का द्वार निश्चित रूप से सार्वजनिक दृश्य के भीतर का स्थान है। यह एक अलग मामला हो सकता था अगर कथित अपराध एक इमारत के अंदर किया गया होता, और यह भी जनता के सामने नहीं था। यद्यपि अगर अपराध इमारत के बाहर किया जाता है, उदाहरण के लिए एक घर के बाहर एक लॉन में, और लॉन किसी के द्वारा चारदीवारी के बाहर सड़क या लेन से देखा जा सकता है, लॉन निश्चित रूप से सार्वजनिक दृश्य के भीतर एक जगह होगी। इसके अलावा, भले ही टिप्पणी एक इमारत के अंदर की गई हो, लेकिन जनता के कुछ सदस्य वहां हैं (मात्र रिश्तेदार या दोस्त नहीं) तो भी यह एक अपराध होगा

क्योंकि यह जनता के सामने है। इसलिए, हमें "सार्वजनिक दृश्य के भीतर स्थान" अभिव्यक्ति को "सार्वजनिक स्थान" अभिव्यक्ति के साथ भ्रमित नहीं करना चाहिए। एक स्थान एक निजी स्थान हो सकता है लेकिन फिर भी सार्वजनिक दृष्टिकोण के भीतर हो सकता है। दूसरी ओर, एक सार्वजनिक स्थान का अर्थ आम तौर पर एक ऐसा स्थान होगा जो सरकार या नगरपालिका (या अन्य स्थानीय निकाय) या गाँव सभा या राज्य के एक साधन के स्वामित्व या पट्टे पर है, न कि निजी व्यक्तियों या निजी निकायों द्वारा।

4.15 मामले में जांच प्रतिकूल रही है। जांच अधिकारी ("आईओ") ने 24.06.2020 को अधिनियम की धारा 14ए के तहत याचिकाकर्ता नंबर 1 को 25.06.2020 को उनके सामने पेश होने का नोटिस दिया था। याचिकाकर्ता ने वकील के माध्यम द्वारा प्रतिनिधित्व किया और कुछ समय मांगा। उन्होंने एफआईआर को चुनौती देते हुए एक रिट याचिका भी दायर की और उस रिट याचिका (आपराधिक) संख्या 1855/2020 में कार्तिक जयशंकर और अन्य बनाम उत्तराखंड राज्य और अन्य, 26.06.2020 को न्यायालय ने अंतरिम आदेश पारित कर राज्य को याचिकाकर्ताओं के विरुद्ध कोई भी कठोर कदम उठाने से रोक दिया है। लेकिन, यह तर्क दिया गया कि उसके बाद, याचिकाकर्ताओं की उपस्थिति की आवश्यकता के बिना, आईओ द्वारा 20.07.2020 को आरोप पत्र दायर किया गया था। यह भी तर्क दिया जाता है कि वास्तव में, प्राथमिकी में, विजय अधिकारी को जानबूझकर गवाह बनाया गया है, ताकि याचिकाकर्ताओं के विरुद्ध मामला बनाया जा सके। याचिकाकर्ता के विद्वान वकील ने कहा कि इससे पहले वर्ष 2017 में भी याचिकाकर्ताओं और मुखबिर के बीच विवाद हुआ था, जिसमें 12.10.2017 को एक समझौता हुआ था, जिसे विजय अधिकारी ने भी देखा था।

4.16. एफआईआर और बाद में आरोप पत्र दाखिल करना दुर्भावनापूर्ण है। यह तर्क दिया गया है कि वास्तव में याचिकाकर्ता संख्या 1 एक वकील है। वह कुछ बिल्डरों के विरुद्ध एक बीरेंद्र सिंह का प्रतिनिधित्व कर रहे हैं, जो एक रिट याचिका

(पीआईएल) संख्या 44/2020, बीरेंद्र सिंह बनाम भारत संघ और अन्य, में उस क्षेत्र की पारिस्थितिकी को नष्ट करना चाहते हैं, इस न्यायालय में ("जनहित याचिका") तर्क दिया जा रहा है कि जनहित याचिका में एक देवन्या रिसॉर्ट्स प्रा. लिमिटेड (बिल्डर) का प्रतिनिधित्व इसके प्रबंध निदेशक, मुरारी साह के माध्यम से किया जाता है, जो मुखबिर के करीबी सहयोगी हैं। चूंकि याचिकाकर्ता संख्या 1 स्थानीय निवासियों के मुद्दे पर आंदोलन कर रहा है, ताकि बिल्डर को क्षेत्र में वनों की कटाई से रोका जा सके, यह तर्क दिया गया है कि याचिकाकर्ताओं को झूठा फंसाया गया है। अन्य मुकदमों का भी संदर्भ दिया गया है, जिसे याचिकाकर्ता संख्या 1 माननीय सर्वोच्च न्यायालय में आंदोलन कर रहा है, जो कि 2018 की सिविल अपील संख्या 8560, बीरेंद्र सिंह बनाम पर्यावरण वन और जलवायु परिवर्तन मंत्रालय और अन्य ("सिविल अपील")। यह तर्क दिया जाता है कि वास्तव में, 8.5 हेक्टेयर भूमि को वन भूमि के रूप में तराशा गया है और याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता के अनुसार, यह भी याचिकाकर्ताओं को गलत तरीके से फंसाने का एक कारण है।

4.17 एफआईआर विश्वसनीय नहीं है, क्योंकि इसके अनुसार, यह 28.05.2020 को दी गई थी, जबकि यह 01.06.2020 को दर्ज की गई थी।

4.18 याचिकाकर्ताओं के विद्वान वकील प्रस्तुत करेंगे कि याचिकाकर्ता संख्या 1 एक पेशेवर अधिवक्ता है। दुर्भावना के कारण उनके करियर को नुकसान पहुंचाने के लिए, ताकि याचिकाकर्ता नंबर 1 बिल्डर के कृत्यों के खिलाफ जनहित याचिका में या माननीय सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष स्थानीय निवासियों का प्रतिनिधित्व न कर सके, कार्यवाही शुरू की गई है, जो निरस्त किया जाने योग्य है।

5. दूसरी ओर, प्रतिवादी संख्या 2 के विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने यह प्रस्तुत किया कि इसका कोई सार नहीं है कि कार्यवाही पक्षपातपूर्ण है। यह तर्क दिया जाता है कि किसी भी कार्रवाई में दुर्भावना को आकर्षित करने के लिए मामले को न्यायालय के आदेश आदि की तरह जांच का हिस्सा होना चाहिए या यह उत्कृष्ट प्रकृति का होना चाहिए। लेकिन, यह तर्क दिया जाता है कि मौजूदा मामले में इसकी

कमी है। वास्तव में, विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने कानून के सिद्धांतों पर भरोसा किया है, जैसा कि कप्तान सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, (2021) 9 एससीसी 35 के मामले में निर्धारित किया गया है। यह तर्क देने के लिए कि संहिता की धारा 482 के तहत कार्यवाही में, जांच के दौरान एकत्र की गई सामग्री को ही देखा जा सकता है। इसके अलावा मामले की जांच नहीं हो सकती है।

5.1. कप्तान सिंह (उपर्युक्त) के मामले में, संहिता की धारा 482 के तहत एक कार्यवाही में निर्णय को बरकरार नहीं रखा गया क्योंकि यह पाया गया कि कुछ विवादित संयुक्त नोटरीकृत हलफनामों पर न्यायालय द्वारा विचार किया गया था। विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने अपनी प्रस्तुति में निम्नलिखित बिंदु उठाएः

5.2. याचिका विचारणीय नहीं है।

5.3. यह तर्क दिया जाता है कि अधिनियम की धारा 14ए संहिता की धारा 482 के तहत न्यायालय के अधिकार क्षेत्र को समाप्त नहीं करती है, बल्कि यह वैकल्पिक उपाय प्रदान करती है, जहां याचिकाकर्ता अपनी शिकायतों को व्यक्त कर सकते हैं। अधिनियम की धारा 8सी का संदर्भ यह तर्क देने के लिए दिया गया है कि, वास्तव में, याचिकाकर्ता को पता था और वे मुखबिर की जाति के बारे में जानते थे।

5.4. अभियुक्त को तलब करने का आदेश अंतर्वर्ती आदेश नहीं है। संजय कुमार राय बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और एक अन्य, 2021 एससीसी ऑनलाइन एससी 367 और प्रभु चावला बनाम राजस्थान राज्य और एक अन्य, 2016 (16) एससीसी 30 के मामले में निर्णय का संदर्भ दिया गया है।

5.5 प्रभु चावला (उपर्युक्त) के मामले में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने दो परस्पर विरोधी निर्णयों के बीच विवाद का निर्णय लिया और कहा कि धारीवाल टोबैको प्रोडक्ट्स लिमिटेड बनाम महाराष्ट्र राज्य, 2009 (2) एस. सी. सी. 370 के मामले में कानून निर्धारित किया गया है, एक अच्छा कानून है। धारीवाल (उपर्युक्त) के मामले में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने स्पष्ट रूप से माना है कि "**संहिता की**

धारा 397 के अर्थ में निर्विवाद रूप से सम्मन जारी करना एक अंतर्वर्ती आदेश नहीं है"।

5.6. संजय कुमार राय (उपर्युक्त) के मामले में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने, अन्य बातों के साथ-साथ, कहा कि **"आरोप तय करने या आरोपमुक्ति से इनकार करने के आदेश न तो अंतर्वर्ती हैं और न ही अंतिम प्रकृति के हैं और इसलिए सीआरपीसी की धारा 397 (2) के प्रतिबन्ध से प्रभावित नहीं हैं। "**

5.7. तत्काल मामले में, प्रथमदृष्टया मामला बनता है। सार्वजनिक दृष्टिकोण की अवधारणा का अर्थ सार्वजनिक स्थान नहीं है। यह "सार्वजनिक दृष्टि के भीतर एक स्थान" होना चाहिए।

5.8. विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने भी हितेश वर्मा (उपरोक्त) के मामले में फैसले का उल्लेख किया है। वही पैराग्राफ, जिसे पहले ही ऊपर उद्धृत किया जा चुका है, जिसमें "सार्वजनिक स्थान" और "सार्वजनिक दृष्टि के भीतर एक स्थान" के बीच अंतर किया गया है।

5.9. विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता द्वारा यह तर्क दिया गया है कि एफआईआर अपराधों के आयोग का खुलासा करती है और किसी हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं है।

5.10. जांच कानून के अनुसार की गई है। जाँच अधिकारी के लिए अभियुक्त द्वारा दिए गए बचाव को ध्यान में रखना बिल्कुल भी आवश्यक नहीं है।

5.11. बेशक, विद्वान वरिष्ठ वकील के अनुसार, याचिकाकर्ताओं को संहिता की धारा 41ए के तहत एक नोटिस दिया गया था, लेकिन उन्होंने कार्यवाही में भाग नहीं लिया। उन्होंने समय लिया। जाँच अधिकारी ने जाँच पूरी करने के पश्चात आरोप पत्र प्रस्तुत किया। इसमें दोष नहीं दिया जा सकता।यह नहीं कहा जा सकता है कि जांच शत्रुतापूर्ण है। जाँच अधिकारी ने याचिकाकर्ताओं से संपर्क किया था।

5.12 यह याचिकाकर्ता हैं, जिन्होंने जांच में भाग नहीं लिया। कार्यवाही दुर्भावनापूर्ण नहीं है।

5.13. केवल यह कहना कि कार्यवाही दुर्भावनापूर्ण है, संहिता की धारा 482 के तहत कार्यवाही को रद्द करने के लिए पर्याप्त नहीं है। इसे स्थापित करने के लिए सामग्री होनी चाहिए। यदि बिंदु बहस योग्य हैं, तो इसके लिए प्रमाण की आवश्यकता होती है। किसी आपराधिक अभियोजन को उसकी सीमा पर ही रद्द करने की कार्यवाही में उन पर विचार नहीं किया जा सकता है।

6. विद्वान राजकीय अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि याचिका पोषणीय नहीं है। प्रथमदृष्टया अपराध साबित होता है। मुखबिर और गवाहों ने अभियोजन पक्ष के मामले का समर्थन किया है। इस कार्यवाही में तथ्यात्मक पहलुओं की जांच नहीं की जा सकती है, इसलिए मामले में कोई हस्तक्षेप आवश्यक नहीं है और याचिका खारिज की जा सकती है।

7. याचिका की पोषणीयता का प्रश्न उठाया गया है, यह तर्क दिया गया है कि अधिनियम की धारा 14ए एक उपाय प्रदान करती है। इसलिए, तत्काल याचिका पोषणीय नहीं है। अधिनियम की धारा 14ए इस प्रकार है:

> "14ए. **अपीलें**.- (1) दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का 2) में निहित किसी बात के होते हुए भी, किसी विशेष न्यायालय या अनन्य विशेष न्यायालय के किसी निर्णय, दंडादेश या आदेश, जो अंतर्वर्ती आदेश नहीं है, के विरुद्ध अपील तथ्यों और विधि दोनों के संबंध में, उच्च न्यायालय में होगी ।
>
> (2) दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का 2) की धारा 378 की उपधारा (3) में किसी बात के होते हुए भी, विशेष न्यायालय या अनन्य विशेष न्यायालय के जमानत मंजूर करने या नामंजूर करने के किसी आदेश के विरुद्ध अपील उच्च न्यायालय में होगी।

(3) तत्समय प्रवृत्त किसी अन्य विधि में किसी बात के होते हुए भी, इस धारा के अधीन प्रत्येक अपील, ऐसे निर्णय दंडादेश या आदेश से, जिससे अपील की गई है, 90 दिन के भीतर की जाएगी: **परंतु** उच्च न्यायालय, 90 दिन की उक्त अवधि की समाप्ति के पश्चात ऐसी अपील को ग्रहण कर सकेगा यदि उसका समाधान हो जाता है कि अपीलार्थी के पास 90 दिन के भीतर अपील नहीं करने का पर्याप्त कारण था: **परंतु** यह और कि कोई अपील 180 दिन की अवधि की समाप्ति के पश्चात ग्रहण नहीं की जाएगी।

(4) उपधारा (1) में की गई प्रत्येक अपील का निपटारा, यथासंभव, अपील ग्रहण करने की तारीख से 3 मास की अवधि के भीतर होगा।

8. अधिनियम के प्रावधान निस्संदेह समाज के एक वर्ग की रक्षा के लिए बनाए गए हैं ताकि उस समूह की सामाजिक-आर्थिक स्थिति में सुधार हो सके। अधिनियम के उद्देश्यों और कारणों का विवरण इसके बारे में बहुत कुछ बताता है।

9. अधिनियम की धारा 14ए, जैसा कि यहां ऊपर उद्धृत किया गया है, अपील के मामले में संहिता के प्रावधान से अलग करती है और इसके अनुसार, अंतर्वर्ती आदेशों को छोड़कर, सभी आदेश अपील योग्य हैं।

10. धारा 14ए (2) में प्रावधान है कि मामले में जमानत देने या इनकार करने का आदेश भी अपील योग्य होगा।

11. याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता ने संहिता की धारा 4 और 5 के प्रावधान का हवाला देते हुए तर्क दिया कि, वास्तव में, अपील के संबंध में अधिनियम के तहत विशिष्ट प्रावधान किए गए हैं। इसलिए, अंतर्वर्ती आदेशों के विरुद्ध अपील के संबंध में, इस विषय पर संहिता के प्रावधान लागू नहीं होंगे। उनका तर्क दिया कि अधिनियम की धारा 14ए (1) अंतर्वर्ती आदेशों के मामलों में अपील पर रोक लगाती है, लेकिन यह स्पष्ट करती है कि इस तरह के अंतर्वर्ती आदेशों को

केवल उप धारा 2 में दिए गए अनुसार जमानत होना चाहिए। यह व्याख्या शायद अधिनियम की धारा 14ए (1) और धारा 14ए (2) की सही व्याख्या नहीं हो सकती है।

12. संहिता की धारा 4 और 5 संहिता के प्रावधानों की प्रयोज्यता के संबंध में प्रावधान करती है। वे इस प्रकार हैं :

> **"4. भारतीय दंड संहिता और अन्य कानूनों के तहत अपराधों का परीक्षण-** (1) भारतीय दण्ड संहिता (1860 का 45) के अधीन सब अपराधों का अन्वेषण, जाँच, विचारण और उनके सम्बन्ध में अन्य कार्यवाही इसमें इसके पश्चात् अन्तर्विष्ट उपबन्धों के अनुसार की जाएगी ।
>
> (2) किसी अन्य विधि के अधीन सब अपराधों का अन्वेषण, जाँच, विचारण और उनके सम्बन्ध में अन्य कार्यवाही इन्हीं उपबन्धों के अनुसार किन्तु ऐसे अपराधों के अन्वेषण, जाँच, विचारण या अन्य कार्यवाही की रीति या स्थान का विनियमन करने वाली तत्समय प्रवृत्त किसी अधिनियमिति के अधीन रहते हुए, की जाएगी।“
>
> "5. **व्यावृत्ति-** इससे प्रतिकूल किसी विनिर्दिष्ट उपबंध के अभाव में इस संहिता की कोई बात तत्समय प्रवृत्त किसी विशेष या स्थानीय विधि पर, या तत्समय प्रवृत्त किसी अन्य विधि द्वारा प्रदत्त किसी विशेष अधिकारिता या शक्ति या उस विधि द्वारा विहित किसी विशेष प्रक्रिया पर प्रभाव नहीं डालेगी ।“

13. संहिता की धारा 5 का प्रावधान यह स्पष्ट करता है कि यदि किसी विशिष्ट कानून के तहत विशिष्ट प्रावधान हैं जो लागू किए जाएंगे और ऐसे प्रावधानों की अनुपस्थिति में, संहिता के प्रावधान लागू होंगे।

14. अधिनियम की धारा 14ए अंतर्वर्ती आदेशों के मामलों में अपील पर रोक लगाती है। अधिनियम की धारा 14ए (2) जमानत आदेशों को अपील योग्य बनाती है। वास्तव में, अधिनियम की धारा 14ए (2) यह स्पष्ट नहीं करती है कि अधिनियम की धारा 14ए (1) को लागू करने के लिए अंतर्वर्ती आदेश क्या होंगे। इसके बजाय, यह जमानत देने और अस्वीकार करने के संबंध में अंतर्वर्ती आदेशों से एक अपवाद बनाता है। यह सच है कि वी.सी. शुक्ला (उपर्युक्त), माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने इस पहलू पर, पैरा 34 में सिद्धांतों का सारांश दिया और मामलों की दो श्रेणी बनाई, या तो अंतर्वर्ती या अंतिम आदेश। लेकिन, सम्मन आदेश के संबंध में तथ्य बना हुआ है, प्रभु चावला (उपर्युक्त) के मामले में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने कानून के सिद्धांतों को बरकरार रखा, जैसा कि धारीवाल (उपर्युक्त) के मामले में निर्धारित किया गया है, जिसमें, यह स्पष्ट रूप से अभिनिर्धारित किया गया है कि किसी अभियुक्त को सम्मन करने का आदेश एक अंतर्वर्ती आदेश नहीं है।

15. धारा 14ए (1) अंतर्वर्ती आदेशों को छोड़कर अन्य मामलों में अपील को प्राथमिकता देने का प्रावधान करती है। क्या इसका मतलब यह है कि याचिकाकर्ताओं ने अपील दायर की होगी और संहिता की धारा 482 के तहत याचिका विचारणीय योग्य नहीं है?

16. संहिता की धारा 482 के तहत क्षेत्राधिकार का प्रयोग किसी भी अदालत की प्रक्रिया के दुरुपयोग को रोकने या अदालत के किसी आदेश को लागू करने या न्याय के उद्देश्यों को सुरक्षित करने के लिए किया जाता है। यह इतना व्यापक क्षेत्राधिकार है लेकिन कानून के सिद्धांतों द्वारा बहुत निर्देशित है जैसा कि माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा कई निर्णयों में निर्धारित किया गया है।

17. दिनेश दत्त जोशी बनाम राजस्थान राज्य और अन्य, (2001) 8 एससीसी 570, के मामले में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने यह मत व्यक्त किया कि उपबंध का प्रयोग उस वास्तविक और पर्याप्त न्याय को करने के लिए किया जा

सकता है, जिसके प्रशासन के लिए यह विद्यमान है। पैरा 6 में, माननीय उच्चतम न्यायालय ने निम्नलिखित रूप में टिप्पणी कीः

> "6. दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 उच्च न्यायालय को ऐसे आदेश देने की अंतर्निहित शक्तियां प्रदान करती है जो संहिता के तहत किसी आदेश को प्रभावी बनाने के लिए या किसी न्यायालय की प्रक्रिया के दुरुपयोग को रोकने के लिए या न्याय के उद्देश्यों को सुरक्षित करने के लिए आवश्यक हो। यह कानून का एक सुस्थापित सिद्धांत है कि प्रत्येक न्यायालय के पास न्याय के लिए एक्स डेबिटो जस्टिटिया के रूप में अंतर्निहित शक्ति होती है -उस वास्तविक और पर्याप्त न्याय को करने के लिए जिसके प्रशासन के लिए अकेले यह मौजूद है या अदालत की प्रक्रिया के दुरुपयोग को रोकने के लिए। खंड में सन्निहित नियम इस सिद्धांत पर आधारित है: जब कानून किसी को कुछ देता है, तो वह उन सभी चीजों को भी देता है जिनके बिना वह चीज स्वयं अनुपलब्ध होगी। यह धारा कोई नई शक्ति प्रदान नहीं करती है, बल्कि केवल यह घोषणा करती है कि उच्च न्यायालय के पास धारा में निर्दिष्ट उद्देश्यों के लिए अंतर्निहित शक्तियां हैं। चूंकि प्रक्रियात्मक कानून में कभी-कभी खामियां पाई जाती हैं, इसलिए जहां कहीं भी ऐसी खामियां पाई जाती हैं, उन्हें आवरण करने के लिए इस धारा को शामिल किया गया है। यद्यपि , इस धारा के अधीन उच्च न्यायालय को प्रदत्त असाधारण शक्तियों का उपयोग, जहां तक संभव हो, असाधारण मामलों के लिए आरक्षित किए जाने की आवश्यकता है।

18. याचिकाकर्ताओं की ओर से, प्रावधानों को अन्य बातों के साथ-साथ इस आधार पर चुनौती दी गई है कि (i) कोई प्रथम दृष्टया मामला नहीं बनता है और (ii) प्रावधान दुर्भावना पर आधारित हैं।

19. हरियाणा राज्य बनाम च. भजन लाल, ए. आई. आर. 1992 एस. सी. 604, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने उन परिस्थितियों को स्पष्ट रूप से निर्धारित किया है जिनके तहत क्षेत्राधिकार का प्रयोग किया जा सकता है। इसके पैरा 102 में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नानुसार कहा:

> "102. अध्याय 14 के अधीन संहिता के विभिन्न सुसंगत उपबंधों की व्याख्या और अनुच्छेद 226 के अधीन असाधारण शक्ति के प्रयोग से संबंधित निर्णयों की एक श्रृंखला में इस न्यायालय द्वारा प्रतिपादित विधि के सिद्धांतों की पृष्ठभूमि में या संहिता की धारा 482 के अधीन अंतर्निहित शक्तियों, जिन्हें हमने ऊपर निकाला और पुनः प्रस्तुत किया है, हम निम्नलिखित श्रेणियों के मामले उदाहरण के रूप में देते हैं, जिसमें ऐसी शक्ति का प्रयोग या तो किसी न्यायालय की प्रक्रिया के दुरुपयोग को रोकने के लिए या अन्यथा न्याय के उद्देश्यों को सुरक्षित करने के लिए किया जा सकता है, यद्यपि कोई सटीक, स्पष्ट रूप से परिभाषित और पर्याप्त रूप से निर्देशित और कठोर दिशानिर्देश या कठोर सूत्र निर्धारित करना और असंख्य प्रकार के मामलों की एक विस्तृत सूची देना संभव नहीं हो सकता है जिनमें ऐसी शक्ति का प्रयोग किया जाना चाहिए।
>
> (1) जहां प्रथम सूचना रिपोर्ट या शिकायत में लगाए गए आरोप, भले ही उन्हें अंकित मूल्य पर लिया गया हो और पूरी तरह से स्वीकार किया गया हो, प्रथम दृष्टया कोई अपराध नहीं बनता है या आरोपी के खिलाफ मामला नहीं बनता है।
>
> (2) जहां प्रथम सूचना रिपोर्ट और एफआईआर के साथ संलग्न अन्य सामग्रियों में आरोप, यदि कोई हो, एक संज्ञेय अपराध का खुलासा नहीं करते हैं, तो संहिता की धारा 155 (2) के दायरे में मजिस्ट्रेट के आदेश के अलावा संहिता की धारा 156 (1) के तहत पुलिस अधिकारियों द्वारा जांच को उचित ठहराया जा सकता है।

(3) जहां प्रथम सूचना रिपोर्ट या शिकायत में लगाए गए निर्विवाद आरोप और उसके समर्थन में एकत्र किए गए साक्ष्य किसी भी अपराध के घटित होने का खुलासा नहीं करते हैं और आरोपी के खिलाफ मामला बनाते हैं।

(4) जहां, एफआईआर में आरोप एक संज्ञेय अपराध का गठन नहीं करते हैं, लेकिन केवल एक गैर-संज्ञेय अपराध का गठन करते हैं, वहां संहिता की धारा 155 (2) के तहत मजिस्ट्रेट के आदेश के बिना एक पुलिस अधिकारी द्वारा किसी भी जांच की अनुमति नहीं दी जाती है।

(5) जहां एफआईआर या शिकायत में लगाए गए आरोप इतने बेतुके और स्वाभाविक रूप से असंभव हैं, जिसके आधार पर कोई भी विवेकशील व्यक्ति कभी भी इस निष्कर्ष पर नहीं पहुंच सकता है कि अभियुक्त के विरुद्ध कार्यवाही के लिए पर्याप्त आधार है।

(6) जहां संहिता या संबंधित अधिनियम (जिसके तहत आपराधिक कार्यवाही शुरू की गई है) के किसी भी प्रावधान में कार्यवाही शुरू करने और जारी रखने पर स्पष्ट कानूनी रोक है और/या जहां संहिता या संबंधित अधिनियम में पीड़ित पक्ष की शिकायत के लिए प्रभावी निवारण प्रदान करने वाला एक विशिष्ट प्रावधान है। ।

(7) जहां किसी आपराधिक कार्यवाही में स्पष्ट रूप से दुर्भावना के साथ भाग लिया जाता है और/या जहां कार्यवाही दुर्भावनापूर्ण रूप से आरोपी पर प्रतिशोध लेने के लिए और निजी और व्यक्तिगत द्वेष के कारण उसे परेशान करने की दृष्टि से शुरू की जाती है। "

20. अधिनियम की धारा 18 अधिनियम के तहत संबंधित मामलों में संहिता की धारा 438 की प्रयोज्यता पर रोक लगाती है। लेकिन, भारत संघ (उपर्युक्त) के मामले में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने स्पष्ट रूप से कहा कि **"यदि अधिनियम के तहत मामले गलत तरीके से दायर किए गए हैं तो संहिता की धारा**

482 के तहत कार्यवाही में इसका ध्यान रखा जा सकता है।" फैसले का पैरा 52 पहले ही यहां ऊपर उद्धृत किया जा चुका है। इसी प्रकार, प्रथम राज चौहान (उपर्युक्त) के मामले में भी यही सिद्धांत निर्धारित किया गया है।

21. अधिनियम के तहत अपराधों के मामलों में संहिता की धारा 482 के तहत अधिकार क्षेत्र को समाप्त नहीं किया गया है। यह नहीं कहा जा सकता है कि जिस समय संहिता की धारा 482 के अधीन किसी कार्यवाही को प्रारंभ में चुनौती दी जाती है, उस समय इस आधार पर विचार नहीं किया जा सकता है कि वह अधिनियम के उपबंध के अधीन है। किसी दिए गए मामले की परिस्थितियाँ हो सकती हैं, जिसके लिए इस न्यायालय को मामले के पहलू पर गौर करने की आवश्यकता हो सकती है।

22. यदि प्रथम दृष्टया मामला अधिनियम के प्रावधानों के तहत नहीं बनता है, तो यह न्यायालय संहिता की धारा 482 के अधीन मामले पर विचार करने के लिए अपने अधिकार क्षेत्र में होगा। अप्रत्यक्ष रूप से, तब यह कहा जा सकता है कि अधिनियम की धारा 14ए का प्रतिबंध लागू नहीं होगा। न्यायालय अब इसकी जांच करने के लिए आगे बढ़ता है।

23. माना की, पार्टियों के बीच मुकदमेबाजी का यह पहला दौर नहीं है। इससे पहले वर्ष 2017 में पार्टियों ने एक-दूसरे के विरुद्ध रिपोर्ट दर्ज कराई थी। उस मामले को दिनांक 12.10.2017 के एक समझौते द्वारा सुलझा लिया गया था। यह एक महत्वपूर्ण दस्तावेज है। यह याचिकाकर्ताओं द्वारा याचिका के संलग्नक 2 के रूप में दायर किया गया है। इसके मुताबिक, तब दोनों पक्षों ने एक-दूसरे के खिलाफ एफआईआर दर्ज कराई थी। इस समझौते के अनुसार पहला पक्ष, मुखबिर है। समझौते के अनुसार, सूचक को अपनी संपत्ति का सीमांकन कराना था, जिसमें याचिकाकर्ताओं को सहायता करनी थी। तर्क यह दिया जा रहा है कि सूचना देने वाले को सीमांकन नहीं मिला। उसने झूठी एफआईआर दर्ज कराई।

24. याचिकाकर्ताओं द्वारा दायर याचिका के पैरा 6 में दिनांक 12.10.2017 के समझौते का उल्लेख किया गया है। इसका जवाब सूचक ने अपने जवाबी शपथ पत्र के पैरा 42 में दिया है। माना कि दोनों पक्ष सम्पति को लेकर विवाद है। मुखबिर द्वारा दायर जवाबी शपथ पत्र का पैरा 42 यह स्पष्ट रूप से स्पष्ट करता है कि पक्ष कुछ संपत्ति के स्वामित्व या कब्जे पर विवाद कर रहे हैं। इस विवाद को बेहतर ढंग से समझने के लिए, जवाबी शपथ पत्र के पैरा 42 के एक हिस्से को पुन: प्रस्तुत करना उपयुक्त होगा, जो इस प्रकार है:

> “बल्कि यह आवेदक नं. 1 है जिसने अपने 'जिलिंग एस्टेट' के मामलों का प्रबंधन शुरू करने के फैसले के बाद से जिलिंग की शांति और सद्भाव को बाधित किया है। 2017 में उनके आगमन पर, प्रतिवादी नं. 1 ने अपने प्रॉक्सी याचिकाकर्ता श्री बीरेंद्र सिंह को प्रतिवादी नं. 2 की जमीन को अवैध रूप से हड़पने के लिए एक तुच्छ और निराधार विभाजन मुकदमा दायर करने के लिए उकसाया, 1982 में उक्त प्रॉक्सी याचिकाकर्ता के ससुर द्वारा कौन सी भूमि बेची गई थी।जैसा कि ऊपर प्रस्तुत किया गया है, विभाजन के मुकदमे को कार्यकारी मजिस्ट्रेट, प्रथम श्रेणी, नैनीताल द्वारा दिनांक 06.03.2018 के एक आदेश द्वारा इस आधार पर खारिज कर दिया गया है कि विचाराधीन भूमि पहले ही विधिवत पंजीकृत बिक्री कार्यों के माध्यम से क्रेता के पक्ष में दे दी गई है। आवेदक नं. 1 ने स्थानीय निवासियों की भूमि के साथ-साथ सार्वजनिक भूमि पर भी अतिक्रमण करके क्षेत्र में शांति भंग की है और उक्त भूमि के मालिक के रूप में जनता का प्रतिनिधित्व कर रहा है। दिनांक 12.10.2017 के समझौते से संबंधित आरोपों के संबंध में, प्रतिवादी नं. 2 ने क्षेत्र में शांति और सद्भाव बनाए रखने के लिए केवल अन्य स्थानीय निवासियों के आग्रह पर उक्त आवेदक के विरुद्ध अपनी शिकायत दर्ज करने के लिए दबाव नहीं डालने पर सहमति व्यक्त की।

25. सूचक के जवाबी शपथ पत्र के पैरा 42 को देखने से यह स्पष्ट है कि उसका दावा है कि उसने याचिकाकर्ता नं. 1 के ससुर से कुछ संपत्ति खरीदी थी। दिनांक 12.10.2017 का समझौता स्वीकार कर लिया गया था। तत्काल विवाद भी एक सम्पति विवाद है। इसकी उत्पत्ति मात्र इसलिए नहीं होती कि सूचना देने वाला किसी विशेष जाति या समुदाय से संबंधित है।

26. खुमान सिंह (ऊपर) और हितेश वर्मा (ऊपर) के मामले में निर्धारित कानून के सिद्धांत तत्काल मामले में पूरी तरह से लागू होते हैं।

27. तत्काल मामले में, पक्ष किसी सम्पति के कब्जे और स्वामित्व को लेकर विवाद कर रहे हैं। जातिसूचक टिप्पणी के साथ गाली-गलौज करने का आरोप याचिकाकर्ताओं के विरुद्ध है, जो संपत्ति पर कब्जे का दावा भी करते हैं। यदि सूचना देने वाला किसी विशेष जाति का सदस्य होता है, तो यह अधिनियम के प्रावधानों के तहत मामला नहीं बनता है। निस्संदेह, मौजूदा मामले में प्रथम दृष्टया अधिनियम के प्रावधानों के तहत अपराध नहीं बनता है।

28. इस चर्चा के मद्देनजर, इस न्यायालय का मानना है कि इस मामले में संहिता की धारा 482 के तहत याचिका सुनवाई योग्य है। अधिनियम की धारा 14ए के प्रतिबंध हटा दिया जाता है।

29. याचिकाकर्ताओं की ओर से तर्क दिया जाता है कि घटना सार्वजनिक स्थान पर नहीं हुई। अतः अधिनियम के प्रावधान लागू नहीं होते हैं। इस तर्क में बल कम है। तर्क यह दिया जा रहा है कि अधिनियम के प्रावधानों को लागू करने के लिए अपराध सार्वजनिक स्थान पर होना चाहिए। इस तर्क को स्वीकार करने के लिए कम योग्यता है। वास्तव में, जैसा कि ऊपर कहा गया है, हितेश वर्मा (उपर्युक्त) के मामले में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने माना है कि यह "सार्वजनिक दृश्य के भीतर एक स्थान" है, न कि "सार्वजनिक स्थान"।

30. यह मुखबिर का मामला है कि वह स्थान सार्वजनिक दृश्य में है। अन्यथा भी, एफआईआर में यह कहा गया है कि एक बाहरी व्यक्ति, विजय

अधिकारी, ने इस घटना को देखा था। लेकिन इस पहलू का अब कोई महत्व नहीं है क्योंकि इस न्यायालय ने पहले ही माना है कि पक्ष संपत्ति के संबंध में मुकदमा कर रहे हैं या विवाद में हैं और यह घटना संपत्ति के स्वामित्व और कब्जे पर विवाद के कारण हुई थी, इसलिए अधिनियम का प्रावधान लागू नहीं हैं।

31. यह तर्क दिया गया है कि जांच शत्रुतापूर्ण है। आईओ ने याचिकाकर्ता नं. 1 को संहिता की धारा 41 ए के तहत नोटिस दिया था, जिसमें उसे 25.06.2020 को उपस्थित होने के लिए कहा गया था। याचिका के पैरा 21 में याचिकाकर्ताओं ने संहिता की धारा 41ए के तहत नोटिस की बात कही है । पैरा 22 में, याचिकाकर्ताओं ने लिखा है कि, वास्तव में, जब उन्हें नोटिस मिला, तो उन्होंने अपने वकील के माध्यम से आईओ से अनुरोध किया, लेकिन उनके आवेदन को आईओ द्वारा स्वीकार नहीं किया गया।

32. राज्य ने अपने जवाबी शपथ पत्र में (जहां याचिका के पैरा 21 और 22 का संदर्भ दिया गया है), पैरा 9 में याचिका के पैरा 21 और 22 के बारे में स्पष्ट रूप से नहीं बताया। यह कहा गया है कि ऐसे आरोप मात्र अपने को कानून के शिकंजे से बचाने के लिए लगाए गए हैं।

33. चाहे जो भी हो, मात्र इसलिए कि जांच के दौरान याचिकाकर्ताओं से पूछताछ नहीं की गई, यह नहीं कहा जा सकता कि आईओ जांच के प्रति शत्रुतापूर्ण था। यह आईओ की कार्रवाई को बहुत दूर तक खींचने वाला होगा।

34. याचिकाकर्ताओं के विद्वान वकील ने यह भी तर्क दिया है कि जांच स्पष्ट और निष्पक्ष होनी चाहिए और यह जीवन के अधिकार का एक गुण भी है। उसने कानून के सिद्धांतों का उल्लेख किया जैसा कि बाबूभाई बनाम गुजरात राज्य गुजरात और अन्य 2010 (12) SCC254 के मामले में निर्धारित किया गया था। इसके पैरा 32 में, माननीय उच्चतम न्यायालय ने निम्नलिखित रूप में टिप्पणी कीः

"32. किसी आपराधिक अपराध की जांच आपत्तिजनक विशेषताओं या कमजोरियों से मुक्त होनी चाहिए, जिससे आरोपी की ओर से वैध रूप से शिकायत हो सकती है कि जांच अनुचित थी और एक गलत उद्देश्य के साथ की गई थी। जांच अधिकारी का यह भी कर्तव्य है कि वह किसी भी आरोपी को किसी भी प्रकार की शरारत और उत्पीड़न से बचाते हुए जांच करे। जांच अधिकारी को निष्पक्ष और सचेत होना चाहिए ताकि साक्ष्य के मनगढ़ंत होने की किसी भी संभावना को खारिज किया जा सके और उसके निष्पक्ष आचरण से इसकी वास्तविकता के बारे में कोई भी संदेह को दूर करना चाहिए। जांच अधिकारी का काम "मात्र ऐसे सबूतों के साथ अभियोजन पक्ष के मामले को मजबूत करना नहीं है जो अदालत को दोषसिद्धि दर्ज करने में सक्षम बना सके, बल्कि वास्तविक बेदाग सच्चाई को सामने लाना है"। (देखें आर.पी. कपूर बनाम पंजाब राज्य [AIR 1960 SC 866 1960 CRI LJ 1239], जमुना चौधरी बनाम बिहार राज्य [(1974) 3 SCC 774:1974 एस. सी. सी. (सी. आर. आई.) 250 ए. आई. आर. 1974 एस. सी. 1822], एस. सी. सी. एटीपी.780, पैरा 11 और महमूद बनाम U.P. का राज्य। [(1976) 1 एससीसी 542:1976 एससीसी (सीआरआई) 72:ए. आई. आर. 1976 एस. सी. 69])

35. कानून के प्रस्ताव पर संदेह नहीं किया जा सकता। एक निष्पक्ष जाँच मात्र एक निष्पक्ष विचारण सुनिश्चित कर सकती है।

36. यह भी तर्क दिया गया कि एफआईआर 28.05.2020 को दी गई थी, लेकिन यह 01.06.2020 को दर्ज की गई। संहिता की धारा 482 के तहत कार्यवाही में इन मुद्दों पर ध्यान नहीं दिया जा सकता है। ऐसा क्यों किया गया? क्या सूचनाकर्ता ने दिनांक 28.05.2020 को एफ.आई.आर. दी है? यदि ऐसा है तो आई. ओ. ने इसे दर्ज क्यों नहीं किया? यदि आवश्यक हो तो विचारण के चरण में इन प्रश्नों की जांच की जा सकती है।

37. कार्यवाही में जो तर्क दिया जा रहा है वह दुर्भावनापूर्ण है। इस पहलू के लिए निश्चित रूप से थोड़ी और जांच की आवश्यकता है। याचिकाकर्ताओं का मामला है कि कुछ बिल्डर नैनीताल जिले के पहाड़ी क्षेत्र में 'जिलिंग एस्टेट' के नाम से जानी जाने वाली सम्पति को हड़पना चाहते हैं। स्थानीय निवासियों में से एक ने जनहित याचिका दायर की जिसका प्रतिनिधित्व याचिकाकर्ता नं. 1 द्वारा एक वकील के रूप में किया जा रहा है जिसमें बिल्डर्स पक्षकार हैं। जनहित याचिका में वह प्रतिवादी नं. 3 हैं। आरोप है कि मुरारी साह मुखबिर की मदद से याचिकाकर्ताओं को झूठा फंसाने की कोशिश कर रहे हैं ताकि उन्हें ऐसे मामलों में पेश होने से रोका जा सके। माननीय सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष कार्यवाही का भी संदर्भ दिया गया है जिसमें कुछ भूमि के सीमांकन के निर्देश दिए गए थे। माननीय सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष कार्यवाही का भी संदर्भ दिया गया है जिसमें कुछ भूमि के सीमांकन के निर्देश दिए गए थे। माननीय सर्वोच्च न्यायालय में याचिकाकर्ताओं द्वारा परिशिष्ट 2 के रूप में दायर की गई कार्यवाही से पता चलता है कि याचिकाकर्ता संख्या 1 ने उन कार्यवाही में बीरेंद्र सिंह का प्रतिनिधित्व किया था।

38. यह भी तर्क दिया गया है कि, वास्तव में, नेशनल ग्रीन ट्रिब्यूनल (एनजीटी) के समक्ष एक कार्यवाही में, बिल्डर ने कुछ दस्तावेज दाखिल किए थे, जो सामान्य स्थिति में, मुखबिर के कब्जे में होते। मुखबिर द्वारा बीरेंद्र सिंह के परिवार के सदस्यों को लिखे गए पत्र थे, जिनका याचिकाकर्ता नं. 1 विभिन्न अदालती कार्यवाही में प्रतिनिधित्व कर रहा था। वे पत्र बिना भेजे ही लौट आए थे। सामान्य तौर पर, उन पत्रों को मुखबिर के पास होना चाहिए था। लेकिन, यह तर्क दिया जाता है कि एनजीटी की कार्यवाही में, मुरारी साह ने अपने हलफनामों के साथ उन गैर-प्रस्तुत पत्रों को दायर किया। यह तर्क दिया गया है कि यह देवन्या रिसॉर्ट्स प्राइवेट लिमिटेड के एमडी मुरारी साह और मुखबिर के बीच सांठगांठ को दर्शाता है।

39. दुर्भावना के प्रश्न पर मुखबिर की ओर से यह तर्क दिया जा रहा है कि अदालत इन कार्यवाहियों में जांच के दौरान एकत्र की गई सामग्री से आगे नहीं बढ़ सकती है।

40. निस्संदेह, न्यायालय जांच के दौरान एकत्र की गई सामग्री या स्वीकृत दस्तावेजों या उपस्थित परिस्थितियों से आगे नहीं जा सकता है, जिसका अनुमान रिकॉर्ड पर रखे गए दस्तावेजों या सामग्री से लगाया जा सकता है। दुर्भावना कोई ऐसी चीज़ नहीं है, जिसे देखा जा सके। यह कोई कार्रवाई नहीं है। यह एक मानसिक स्थिति है। इसका अनुमान केवल एक पक्ष की कार्रवाई से लगाया जा सकता है।

41. इस न्यायालय ने आपराधिक विविध आवेदन संख्या 1136/2013, भूपाल सिंह और अन्य बनाम उत्तराखंड राज्य और अन्य, में दुर्भावना पर अवधारणा और कानून पर चर्चा की है और पैरा 21 से 29 और 31 में निम्नानुसार देखा गया है:-

> "21. दुर्भावना का शाब्दिक अर्थ है "बुरा विश्वास" या "धोखा देने का इरादा"। बिहार राज्य और अन्य बनाम पी.पी. शर्मा, आईएएस और अन्य, 1992 एससीसी (सीआरआई) 192 के मामले में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि "सत्ता के दुर्भावनापूर्ण प्रयोग का प्रश्न केवल तभी महत्व रखता है जब आपराधिक मुकदमा बाहरी विचारों और अनधिकृत उद्देश्य के लिए शुरू किया गया हो" (पैरा 22) । आगे यह भी देखा गया कि "यह दिखाने के लिए कोई सामग्री नहीं है कि मामला दर्ज करने का प्रमुख उद्देश्य उत्तरदाताओं का चरित्र हनन करना या उन्हें परेशान करना और अपमानित करना था। यह न्यायालय बिहार राज्य बनाम जे.ए.सी. सलधाना में माना है कि जब सूचना थाने में दर्ज की जाती है और अपराध दर्ज किया जाता है, तो मुखबिर की दुर्भावना गौण महत्व की होगी। यह जाँच के दौरान एकत्र की गई सामग्री है जो अभियुक्त व्यक्ति के भाग्य का फैसला करती है।
>
> 22. माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा दुर्भावना की अवधारणा पर आगे चर्चा की गई है और यह माना गया है कि;

1. (1980) 1 एससीसी 554:1980 एससीसी (सीआरआई) 272:(1980) 2 एससीआर 16

"49. उपरोक्त पृष्ठभूमि का मुख्य बिंदु यह है कि क्या आरोप-पत्र शिकायतकर्ता आर.के. सिंह या जांच अधिकारी जी.एन.शर्मा में से किसी की ओर से कथित दुर्भावना से दूषित हैं? एस.ए. डी स्मिथ द्वारा प्रशासनिक कार्रवाई की न्यायिक समीक्षा में (तीसरा संस्करण.atp.293[2] कहा गया है कि:-

"वैधानिक शक्तियों के प्रयोग के संबंध में .....बुरे विश्वास की अवधारणा ..... में बेईमानी (या धोखाधड़ी) और द्वेष शामिल है। एक शक्ति का प्रयोग धोखे से किया जाता है यदि उसका भंडार उस उद्देश्य के अलावा किसी अन्य उद्देश्य को प्राप्त करने का इरादा रखता है जिसके लिए वह मानता है कि शक्ति प्रदान की गई है। उसका इरादा किसी अन्य सार्वजनिक हित या निजी हित को बढ़ावा देना हो सकता है। किसी शक्ति का प्रयोग दुर्भावनापूर्ण ढंग से किया जाता है यदि इसका भंडार उन लोगों के प्रति व्यक्तिगत शत्रुता से प्रेरित होता है जो इसके प्रयोग से सीधे प्रभावित होते हैं..... प्रशासनिक विवेक का अर्थ है प्रशासनिक रूप से विवेकशील होने की शक्ति। इसका तात्पर्य किसी कार्य को करने या किसी मामले को विवेक से तय करने का अधिकार है.....
....."

"" 50. बदनीयत का अर्थ है सद्भावना की कमी, व्यक्ति पूर्वाग्रह, द्वेष, परोक्ष या अनुचित उद्देश्य या गुप्त उद्देश्य .... "

2. संस्करण: चौथा संस्करण, पृ. 335

"51. इसलिए, की गई कार्रवाई को ऐसे विचारों के लिए दुर्भावनापूर्ण बनाया जाना साबित किया जाना चाहिए, केवल दावा या अस्पष्ट या नीरस बयान पर्याप्त नहीं है। इसे किसी दिए गए मामले में स्वीकृत या सिद्ध तथ्यों और परिस्थितियों द्वारा प्रदर्शित किया जाना चाहिए। यदि यह स्थापित हो जाता है कि कार्रवाई ऐसे किसी भी विचार के लिए दुर्भावनापूर्ण तरीके से या सत्ता पर धोखाधड़ी या सत्ता के रंगीन प्रयोग द्वारा की गई है, तो इसे टिकने की अनुमति नहीं दी जा सकती है।

23. झंडू फार्मास्युटिकल वर्क्स लिमिटेड और अन्य बनाम मोहम्मद शराफुल हक और अन्य, (2005) 1 एससीसी 122 के मामले में माननीय सर्वोच्च ने कहा कि:-

> "..... यदि शिकायतकर्ता के शपथ पर दिए गए बयान के आलोक में आरोपों पर विचार करने पर ऐसा प्रतीत होता है कि अपराध या अपराध की घटकों का खुलासा हो गया है और यह दिखाने के लिए कोई सामग्री नहीं है कि शिकायत दुर्भावनापूर्ण है, तुच्छ या कष्टप्रद, उस स्थिति में उच्च न्यायालय द्वारा हस्तक्षेप का कोई औचित्य नहीं होगा। जब पुलिस थाने में कोई सूचना दर्ज की जाती है और कोई अपराध दर्ज किया जाता है, तो सूचना देने वाले की दुर्भावना गौण महत्व की होगी। यह जांच के दौरान एकत्र की गई सामग्री और अदालत में पेश किए गए सबूत हैं जो आरोपी व्यक्ति के भाग्य का फैसला करते हैं। मुखबिर के विरुद्ध दुर्भावना के आरोपों का कोई मतलब नहीं है और ये अपने आप में कार्यवाही को रद्द करने का आधार नहीं हो सकते। (देखें :धनलक्ष्मी बनाम आर. प्रसन्ना कुमार 3 राज्य 9 बिहार बनाम पी. पी. शर्मा, रूपन देओल बजाज बनाम कंवर पाल सिंह गिल 5, केरल राज्य बनाम ओ. सी. कुट्टन 6, यू. पी.ओ. पी. शर्मा 7, रश्मि 12 कुमार बनाम महेश कुमार भादा 8 सतविंदर

कौर बनाम राज्य (सरकार) 2 दिल्ली के एन. सी. टी.) 9 और राजेश बजाज बनाम दिल्ली के राज्य एन. सी. टी. (पैरा 11)

24. कर्नाटक राज्य बनाम एम. देवेंद्रप्पा अग्रेतर अन्य (2002) 3 एस. सी. सी. 89, के मामले में माननीय न्यायालय ने संहिता की धारा 482 के दायरे की आगे व्याख्या की है और यहां बताया गया है:

"6. ..... सभी न्यायालयों के पास, चाहे वे नागरिक हों या फौजदारी, किसी भी स्पष्ट प्रावधान के अभाव में, जैसा कि उनके संविधान में निहित है, सभी ऐसी शक्तियाँ हैं जो सही कार्य करने और गलत को पूर्ववत करने के लिए आवश्यक हैं। सिद्धांत पर न्याय का प्रशासन "*क्वांडे लेक्स एलिक्विड अलिकी कॉन्सेडिट, कॉन्सेडेरे विडेटुर इन साइन क्यू इप्सा, एस्से नॉन पोटेस्ट*" (जब कानून किसी व्यक्ति को कुछ भी देता है तो वह उसे वह देता है जिसके बिना उसका अस्तित्व नहीं हो सकता)। धारा के तहत शक्तियों का प्रयोग करते समय, न्यायालय अपील या पुनरीक्षण न्यायालय के रूप में कार्य नहीं करता है। इस धारा के तहत अंतर्निहित अधिकार क्षेत्र, हालांकि व्यापक है, का प्रयोग संयमपूर्वक, ध्यान और सावधानी के साथ किया जाना चाहिए और केवल तभी जब ऐसा प्रयोग खंड में विशेष रूप से निर्धारित परीक्षणों द्वारा उचित ठहराया जाता है । इसका प्रयोग एक्स डेबिटो जस्टिटिया के तहत, वास्तविक और पर्याप्त न्यायाधीश करने के लिए किया जाना चाहिए, जिसके प्रशासन के लिए केवल अदालतें मौजूद हैं

3 1990 सप्प एससीसी 686:1991 एससीसी (सीआरआई) 142

4 1992 सप्प (1) एससीसी 222:1992 एससीसी (सीआर) 192: एआईआर 1991 एससी 1260

5 (1995) 6 एससीसी 194:1995 एससीसी (सीआरआई) 1059

6 (1999) 2 एससीसी 651:1999 एससीसी (सीआरआई) 304: एआईआर 1999 एससी 1044

7 (1996) 7 एससीसी 705:1996 एससीसी (सीआरआई) 497

8 (1997) 2 SCC 397:1997 SCC (Cri) 415

9 (1999) 8 SCC 728:1999 SCC (Cri) 1503: AIR 1999 SC 3596

10 (1999) 3 SCC 259 :1997 SCC (Cri) 401

न्यायालय का अधिकार न्याय की उन्नति के लिए मौजूद है और यदि अन्याय उत्पन्न करने के लिए उस अधिकार का दुरुपयोग करने का कोई प्रयास किया जाता है, तो न्यायालय के पास दुरुपयोग को रोकने की शक्ति है। **किसी भी कार्रवाई की अनुमति देना न्यायालय की प्रक्रिया का दुरुपयोग होगा जिसके परिणामस्वरूप अन्याय होगा और न्याय को बढ़ावा मिलने में बाधा आएगी। शक्तियों का प्रयोग करते हुए न्यायालय के लिए किसी भी कार्यवाही को रद्द करना उचित होगा यदि उसे लगता है कि इसे शुरू करना/जारी रखना न्यायालय की प्रक्रिया का दुरुपयोग है या इन कार्यवाहियों को रद्द करना अन्यथा न्याय के उद्देश्य को पूरा करेगा**.....

(अवधारण दिया गया)

25. एम. देवेन्द्रप्पा (उपर्युक्त) के मामले में, माननीय न्यायालय ने, अन्य बातों के अलावा, यह माना कि "न्यायिक प्रक्रिया उत्पीड़न, या, अनावश्यक उत्पीड़न का साधन नहीं होनी चाहिए। न्यायालय को विवेकाधिकार का प्रयोग करने में सतर्क और विवेकपूर्ण होना चाहिए और प्रक्रिया जारी करने से पहले सभी प्रासंगिक तथ्यों और परिस्थितियों को ध्यान में रखना चाहिए, ऐसा न हो कि यह किसी भी व्यक्ति को अनावश्यक रूप से परेशान करने के लिए प्रतिशोध के रूप में निजी शिकायतकर्ता के हाथों में एक साधन बन जाए।"(पैरा 8)

26. चन्द्रपाल सिंह एवं अन्य बनाम महाराज सिंह और अन्य, (1982) 1 एससीसी 466, के मामले में माननीय न्यायालय ने अन्य बातों के साथ-साथ कहा कि "प्रतिवादी के विद्वान वकील ने हमें बताया कि झूठी गवाही देने की प्रवृत्ति बहुत बढ़ रही है और जब तक कि अदालतें कड़ी कार्रवाई न करें ऐसे व्यक्तियों पर सख्ती न करें तो पूरी न्यायिक प्रक्रिया का उपहास उड़ाया जाएगा। हम प्रस्तुतीकरण में कुछ ताकत देखते हैं, लेकिन यह भी

उतना ही सच है कि दुखी और निराश वादियों को आपराधिक अदालत के अधिकार क्षेत्र का सस्ते में इस्तेमाल करके अपनी हताशा को उजागर करने की अनुमति नहीं दी जानी चाहिए।"(पैरा 14)

27. कर्नाटक राज्य बनाम मुनिस्वामी और अन्य, (1977) 2 एससीसी 699 के मामले में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने इस प्रकार कहा:

> "7. .....दीवानी और आपराधिक दोनों मामलों में उच्च न्यायालय की अंतर्निहित शक्तियों को बचाना, एक हितकारी सार्वजनिक उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए बनाया गया है, जो यह है कि अदालत की **कार्यवाही को उत्पीड़न या उत्पीड़न के हथियार में बदलने की अनुमति नहीं दी जानी चाहिए। एक आपराधिक मामले** में, लचर अभियोजन के पीछे छिपी हुई वस्तु, उस सामग्री की प्रकृति जिस पर अभियोजन की संरचना टिकी हुई है और इसी तरह उच्च न्यायालय को न्याय के हित में कार्यवाही को रद्द करने का औचित्य साबित होगा। न्याय के उद्देश्य केवल कानून के उद्देश्यों से अधिक हैं, हालांकि न्याय को विधायिका द्वारा बनाए गए कानूनों के अनुसार प्रशासित किया जाना चाहिए। इन टिप्पणियों को करने के लिए बाध्यकारी आवश्यकता यह है कि उस प्रावधान के उद्देश्य और उद्देश्य को उचित रूप से साकार किए बिना, जो राज्य और उसके विषयों के बीच न्याय करने के लिए उच्च न्यायालय की अंतर्निहित शक्तियों को बचाने का प्रयास करता है, उस मुख्य क्षेत्राधिकार की चौड़ाई और रूपरेखा की सराहना करना असंभव होगा।"
>
> (अवधारण दिया गया)

28. पंजाब राज्य बनाम वी.के. खन्ना एआईआर 2001 343 के मामले में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय के पास दुर्भावना की अवधारणा की

व्याख्या करने का अवसर था। न्यायालय ने इस प्रकार अभिनिर्धारित कियाः

> “.....'दुर्भावनापूर्ण' अभिव्यक्ति का कानूनी वाक्यांशविज्ञान में एक निश्चित महत्व है और यह संभवतः काल्पनिक कल्पना या यहां तक कि आशंकाओं से उत्पन्न नहीं हो सकता है, लेकिन पूर्वाग्रह और कार्यों के निश्चित प्रमाण मौजूद होने चाहिए जिन्हें अन्यथा प्रामाणिक-कार्य नहीं माना जा सकता है अन्यथा प्रामाणिक नहीं, यद्यपि, अपने आप में दुर्भावनापूर्ण नहीं माना जाएगा जब तक कि यह कुछ अन्य कारकों के साथ असंगत न हो जो कार्य के कर्ता की ओर से एक बुरे उद्देश्य या इरादे को दर्शाएगा।"(पैरा 25)

"29. पेप्सी फ़ूड लिमिटेड और अन्य बनाम विशेष न्यायिक मजिस्ट्रेट और अन्य, (1998) 5 एससीसी 749, के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने पाया कि:

> "28. किसी आपराधिक मामले में आरोपी को तलब करना गंभीर मामला है। आपराधिक कानून को निश्चित रूप से गति में नहीं लाया जा सकता है। ऐसा नहीं है कि शिकायतकर्ता को आपराधिक कानून लागू करने के लिए शिकायत में अपने आरोपों का समर्थन करने के लिए मात्र दो गवाहों को लाना पड़ता है। अभियुक्त को बुलाने वाले मजिस्ट्रेट के आदेश में यह प्रतिबिंबित होना चाहिए कि उसने मामले के तथ्यों और उस पर लागू कानून को ध्यान में रखा है। उसे शिकायत में लगाए गए आरोपों की प्रकृति और उसके समर्थन में मौखिक और दस्तावेजी दोनों साक्ष्यों की जांच करनी होगी और क्या यह शिकायतकर्ता के लिए आरोपी को दोषी ठहराने में सफल होने के लिए पर्याप्त होगा। ऐसा नहीं है कि अभियुक्त को समन करने से पहले

प्रारंभिक साक्ष्य दर्ज करने के समय मजिस्ट्रेट मूक दर्शक होता है। मजिस्ट्रेट को रिकॉर्ड पर लाए गए सबूतों की सावधानीपूर्वक जांच करनी होती है और आरोपों की सत्यता का पता लगाने के लिए या अन्यथा उत्तर पाने के लिए शिकायतकर्ता और उसके गवाहों से खुद भी सवाल पूछ सकते हैं और फिर जांच कर सकते हैं कि क्या कोई अपराध प्रथम दृष्टया सभी या किसी अभियुक्त द्वारा किया गया है। "

"31. विनीत कुमार और अन्य के मामले में (2017) 13 SCC 369 । पक्षों के बीच वित्तीय लेन-देन था और परक्राम्य लिखत अधिनियम, 1882 (संक्षेप में "एनआई अधिनियम") की धारा 138 के तहत एक शिकायत लंबित थी। इस अवधि के दौरान, दूसरे पक्ष ने बलात्कार के लिए एक आपराधिक मामला दर्ज किया, जो अंतिम रिपोर्ट प्रस्तुत करने में समाप्त हो गया, लेकिन विरोध याचिका पर आरोपियों को तलब किया गया। उस मामले में भी, दलीलें दी गईं कि बलात्कार के लिए आपराधिक कार्यवाही दुर्भावनापूर्ण थी और एनआई अधिनियम की धारा 38 के तहत अपराध के लिए शिकायतकर्ता और उसके परिवार के सदस्यों को बचाने के लिए गलत तरीके से शुरुआत की गई थी। उस मामले में कार्यवाही रद्द कर दी गई थी। न्यायालय ने पैरा 41 में निम्नलिखित मत व्यक्त कियाः

"41.....यदि किसी व्यक्ति द्वारा किसी परोक्ष उद्देश्य से न्यायालय की गंभीर प्रक्रिया का दुरुपयोग करने की कोशिश की जाती है, तो न्यायालय को शुरुआत में ही प्रयास को विफल करना होगा। यदि मामला हरियाणा राज्य बनाम भजन लाल 11 मामले में इस न्यायालय द्वारा बताई गई उल्लिखित श्रेणियों में से किसी एक में आता है तो अदालत अभियोजन चलाने की अनुमति नहीं दे सकती। न्यायिक प्रक्रिया एक गंभीर कार्यवाही है जिसे उत्पीड़न के संचालन के साधन में परिवर्तित करने की अनुमति नहीं दी जा सकती है।

जब यह इंगित करने के लिए सामग्री मौजूद हो एक आपराधिक कार्यवाही में स्पष्ट रूप से दुर्भावना के साथ भाग लिया जाता है और कार्यवाही दुर्भावनापूर्ण रूप से एक गुप्त उद्देश्य के साथ शुरू की जाती है, उच्च न्यायालय हरियाणा राज्य भजन लाल में उल्लिखित श्रेणी 7 के तहत कार्यवाही को रद्द करने के लिए सीआरपीसी की धारा 482 के तहत अपने अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करने में संकोच नहीं करेगा। जिसका प्रभाव निम्नलिखित है:

> "(7) जहां किसी आपराधिक कार्यवाही में स्पष्ट रूप से दुर्भावना के साथ भाग लिया जाता है और/या जहां कार्यवाही दुर्भावनापूर्ण रूप से आरोपी पर प्रतिशोध लेने के लिए और निजी और व्यक्तिगत द्वेष के कारण उसे परेशान करने की दृष्टि से शुरू की जाती है।"

उपरोक्त श्रेणी 7 वर्तमान मामले के तथ्यों में स्पष्ट रूप से आकर्षित होती है। हालाँकि उच्च न्यायालय ने हरियाणा राज्य बनाम भजन लाल10 के फैसले को नोट कर लिया है, लेकिन वर्तमान मामले के प्रासंगिक तथ्यों, उन सामग्रियों का विज्ञापन नहीं किया, जिन पर आई.ओ. द्वारा अंतिम रिपोर्ट प्रस्तुत की गई थी। इस प्रकार, हम इस बात से पूरी तरह संतुष्ट हैं कि वर्तमान मामला एक उपयुक्त मामला है जहां उच्च न्यायालय को सीआरपीसी की धारा 482 के तहत अपने अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करना चाहिए था और आपराधिक कार्यवाही को रद्द कर दिया था। "

42. तत्काल एक मामला है, जो कथित तौर पर संपत्ति विवाद से उत्पन्न हुआ है। जाहिर तौर पर, जनहित याचिका और माननीय सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष सिविल अपील के आधार पर, यह कहा जा सकता है कि यह याचिकाकर्ता नं. 1 है, जो बिल्डर के खिलाफ बीरेंद्र सिंह का प्रतिनिधित्व कर रहा है। मुद्दा गैर-वन गतिविधियों के लिए वन का उपयोग का है। 2018 की सिविल अपील संख्या 8560

में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने 11.02.2020 को आयुक्त रिपोर्ट के एक पैराग्राफ का हवाला दिया। (यह याचिकाकर्ताओं का मामला है कि बिल्डर उस अपील में एक पक्ष है और याचिकाकर्ता संख्या 1 ने अपीलार्थी का प्रतिनिधित्व किया)

> "एस्टेट के लगभग एक चौथाई क्षेत्र में मुख्य रूप से ओक और चिर पाइन की वन वनस्पति है। इसमें जंगल जैसे क्षेत्र का चरित्र और स्वरूप है। अधिकांश भाग में मुकुट घनत्व 40% और उससे अधिक की सीमा में है, और परिणामस्वरूप यह क्षेत्र निश्चित रूप से "वन" शब्द के शब्दकोश अर्थ के संदर्भ में एक जंगल होने के योग्य है। हालाँकि, एफसी अधिनियम के प्रयोजन के लिए "मानित वन" के रूप में इसका वर्गीकरण माननीय न्यायाधिकरण द्वारा अन्य बातों के साथ-साथ क्षेत्र में मौजूद वन वनस्पति के आलोक में तय किया जा सकता है, जैसा कि इस रिपोर्ट में पहले वर्णित है, राज्य द्वारा विकसित मसौदा मानदंड और माननीय सर्वोच्च न्यायालय के विभिन्न निर्णय जिनमें डब्ल्यूपी (सिविल) न. 202 /1995-टी. एन. गोडावर्मन बनाम यूओआई और अन्य में 12-12-1996 के निर्णय सहित यूओआई और अन्य, लाफार्ज उमियम माइनिंग प्राइवेट लिमिटेड बनाम यूओआई (2011 7, एससीसी 338) और आनंद आर्य और अन्र। बनाम यू. ओ. आई. और अन्य। आई. ए. नं. 1995 के डब्ल्यूपी (सिविल) संख्या. 202 में 2009 का 2609-2610 के निर्णय शामिल हैं। अंतरिम में, जंगल जैसी वनस्पति वाले क्षेत्र का राजस्व और वन विभागों द्वारा संयुक्त रूप से सर्वेक्षण और सीमांकन किया जाएगा और सर्वेक्षण होने और जमीन पर क्षेत्र का सीमांकन होने तक उस क्षेत्र में किसी भी गैर-वन गतिविधि की अनुमति नहीं दी जाएगी। "

43. और फिर, न्यायालय ने पाया कि यह क्षेत्र 8.5 हेक्टेयर है। जनहित याचिका में, इस न्यायालय ने सिविल अपील में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा पारित आदेश दिनांक 11.02.2020 के क्रम में सीमांकन हेतु निर्देशित किया है। उस

तिथि को न्यायालय द्वारा एक वचनपत्र भी अभिलेख में लिया गया था कि **"सक्षम प्राधिकारी की अनुमति के बिना कोई पेड़ नहीं काटा जाएगा"**। यह आदेश 23.03.2020 को पीआईएल में पारित किया गया था। संपत्ति को लेकर विवाद चल रहा है । पार्टियों ने पहले ही विवाद सुलझा लिया था। यह प्रतिवादी नं. 2 है, जिसे संपत्ति का सीमांकन करना था। बेशक, उसने ऐसा नहीं किया।

44. उपरोक्त कारकों को मिलाकर यह न्यायालय इस निष्कर्ष पर पहुंचता है कि, वास्तव में, प्रतिवादी संख्या 2 ने दुर्भावना से कार्यवाही शुरू की। पूरी कार्यवाही दुर्भावना से प्रेरित है। तदनुसार, यह रद्द किये जाने योग्य है।

45. याचिका स्वीकार की जाती है। आक्षेपित आरोप पत्र, संज्ञान आदेश और मामले की संपूर्ण कार्यवाही रद्द की जाती है।

(रवींद्र मैथानी, जे.)
22.08.2022

रवि बिष्ट